जय वाराणसी एक्सप्रेस

जयन्त नार्लीकर

26 जनवरी सन 1980, वाराणसी कैंट रेलवे स्टेशन

"मेरी बात मानिए तो वाराणसी-दादर एक्सप्रेस से यात्रा न कीजिए। बेहतर है कि आप बम्बई मेल से जाएँ।" मेरे मित्र पांडेय जी ने मुस्कुराते हुए मुझे सलाह दी।

उनके जैसे सरल स्वभाव और कम बोलने वाले व्यक्ति से इस तरह की मुस्कराहट भरी सलाह पर मुझे आश्चर्य हुआ। मैं सोचने लगा कि भाई बात क्या है?

खैर! वैज्ञानिक होने के नाते मैंने यहाँ भी सोचने का वही तरीका अपनाया और इस नतीजे पर पहुँचा कि वाराणसी से बम्बई की यात्रा के लिए यही गाड़ी उपयुक्त है। बम्बई मेल में मेरा आरक्षण भी नहीं था और वह मुगल-सराय स्टेशन से सवेरे छह बजे छूटती है। एक तो स्टेशन दूर, दूसरे पाँच बजे सवेरे कौन उठेगा? मेरे सारे तर्क इसी में रहे कि वाराणसी-दादर एक्सप्रेस से यात्रा का निर्णय बिलकुल ठीक है।

पर पांडेय जी बार-बार समझाते रहे, "वाराणसी-इलाहाबाद के बीच एक ही रेल-लाइन है। और यह गाड़ी पैसेंजर की तरह चलती है।"

मैंने उनसे कहा कि पांडेय जी, जिस व्यक्ति ने पुणे-कोल्हापुर के बीच पुरानी "एम.एस.एम." में यात्रा की है, उसे अच्छी तरह मालूम है कि कोई गाड़ी कितनी धीरे चल सकती है।

"लेकिन श्रीमान आप यह क्यों भूल रहे हैं कि आप 26 जनवरी को यात्रा पर निकल रहे हैं!" मैं इस बारे में कुछ स्पष्ट जान पाता कि किसी और ने बीच में टोक दिया और मैं पांडेय जी से यह न पूछ सका कि 26 जनवरी से इस गाड़ी का क्या रिश्ता है? हम लगभग एक दर्जन वैज्ञानिक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में "अन्तरिक्ष-विज्ञान संगोष्ठी" में भाग लेने के बाद बम्बई लौट रहे थे।

गाड़ी स्टेशन से ग्यारह बजे ठीक समय पर छूटी। यह खुशी की बात थी। वो कहते हैं न कि काम की शुरुआत अच्छी हुई तो समझो आधा काम हो गया। लेकिन धीमी चाल चलते अभी दस मिनट भी न हुआ था कि गाड़ी रुक गई। हमने सोचा कि शायद सिग्नल के पास गाड़ी है। लेकिन बाहर सिग्नल भी नहीं दिखाई दिया। नीचे पटरी के दोनों ओर काफी लोग इकट्ठा थे। कोई दुर्घटना तो नहीं हुई? अचानक यह विचार कौंधा। लेकिन नीचे हिलते-डुलते लोग इतने खुश नज़र आ रहे थे कि मेरी आशंका तुरन्त मिट गई। लगभग 15 मिनट बाद जब नीचे खड़ी भीड़ डिब्बों में चढ़ गई तो हमारी गाड़ी ने फिर से रेंगना शुरू कर दिया।

लेकिन, यह क्या? आधा किलोमीटर के बाद फिर स्टॉप! पटरी एक बार फिर भीड़ से घिर गई। कुछ देर बाद सभी लोग अन्दर आ गए। कुछ लड़के जब खिड़कियों की छड़ें पकड़कर चढ़ने लगे तो मैं अचम्भे में पड़ गया, ये लोग अन्दर कैसे आएँगे? लेकिन वे अन्दर आने को उत्सुक ही कहाँ थे! यह मुझे तब पता चला जब उन्होंने छत पर थपकी देकर गाना शुरू किया। अब मुझे इन "पर्वतारोहियों" की क्षमता का पूरा आभास हो गया था।

किसी तरह करीब 32 किलोमीटर की यात्रा पूरी हुई और हम चौखंडी स्टेशन पर पहुँचे। यह सफर हमने डेढ़ घण्टे में तय किया था।

इस स्टेशन पर कुछ स्थानीय सम्भ्रान्त लोगों ने इन "छत-यात्रियों" से नीचे उतरने का अनुरोध किया, जो मान लिया गया। अब ये तमाम साहसी यात्री गाड़ी के दरवाज़े पर जमा हो गए थे।

सरकारी कर्मचारियों और स्वयंसेवकों की मिली-जुली कोशिशों से हमारी गाड़ी ने फिर खिसकना शुरू किया। जिस तरह ढेर सारे विशेषज्ञों-सलाहकारों के दिशा-निर्देश में किसी देश की अर्थव्यवस्था लुढ़कती हुई आगे बढ़ती है, हमारी गाड़ी भी रुकती-चलती किसी तरह दोपहर बाद तीन बजे भदोही पहुँची। लगभग डेढ़ घण्टे देर से।

"कितनी दूरी तय कर चुके?" एक मित्र ने उत्सुकता से पूछा। पता चला कि हम लोगों ने करीब 64 किलोमीटर की दूरी तय कर ली है, यानी अभी इलाहाबाद 96 किलोमीटर दूर है। हमारी गाड़ी के इलाहाबाद पहुँचने का ठीक समय 4 बजकर 15 मिनट है।

भदोही स्टेशन पर हमारी गाड़ी इस तरह खड़ी रही, जैसे वह अपनी मंज़िल पर ही पहुँच गई हो। पीछे से गाड़ियाँ आगे निकलती रहीं। मालूम हुआ कि ये एक्सप्रेस गाड़ियाँ हैं और उन्हें पूरा हक है कि हमारी पैसेंजर गाड़ी को पीछे छोड़े जाएँ।

लगभग एक घण्टे के इन्तज़ार के बाद हमारे एक साथी ने बड़ी अहम जानकारी दी। उसने बताया कि हमारी गाड़ी का इंजन गायब है। तरह-तरह की आशंकाएँ और सवाल! इंजन खराब तो नहीं हो गया? "शंटिंग" तो नहीं कर रहा है या किसी वी.आई.पी. के लिए किसी विशेष गाड़ी से तो नहीं जोड़ दिया

गया? यह भी हो सकता है कि इतनी लम्बी यात्रा तय करने के बाद भूखा-प्यासा ड्राइवर उसे लेकर खाना खाने न चला गया हो!

खैर! हमारी आशंकाएँ निराधार साबित हुईं। हमने देखा कि हमारे पास वाली रेल पटरी पर वह इंजन आगें-पीछे हो रहा है। बाद में मालूम हुआ कि इतनी लम्बी दूरी तय करने के बाद उसे पानी की ज़रूरत थी, इसलिए उसे टंकी के पास ले जाया गया था। लगभग ढाई घण्टे के विश्राम के बाद हमारी गाड़ी ने अपनी मंज़िल की ओर एक बार फ़िर खिसकना शुरू किया। हाँ, यह तो बताना भूल ही गया कि भदोही में हमारे बहुत से "बिना टिकट साथियों" ने हमारा साथ छोड़ दिया और वे एक्सप्रेस गाड़ियों की छत पर बैठकर हमसे आगे निकल गए।

हम कहाँ जाते, कैसे जाते! हफ्तों पहले आरक्षण कराने वाले हम लोग मजबूर थे और इन बिना टिकट उन्मुक्त पंछियों को ऐसा कोई बन्धन नहीं था कि वे एक ही गाड़ी से सफर करें।

हमारे कुछ मित्र चर्चा करने लगे कि आखिर वाराणसी-दादर एक्सप्रेस के प्रति उत्तर रेलवे इतनी लापरवाह क्यों है? लम्बे तर्क-वितर्क के बाद हम लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वास्तव में उत्तर रेलवे के अधिकारीगण भागती ज़िन्दगी जीने वाले हम बम्बईवासियों को पूर्वी उत्तरप्रदेश की शान्त और आहिस्ता-आहिस्ता खिसकने वाली ज़िन्दगी की खूबियों से परिचित कराना चाहते हैं।

मेरे एक वरिष्ठ सहयोगी इन सब चीज़ों से अलग, शुरू से ही एक किताब पढ़ने में लीन थे। बाद में उन्होंने बताया कि वे पढ़ रहे थे कि रूसी क्रान्ति के तुरन्त बाद गाड़ियों की क्या हालत थी। उस वक्त रूस में भी लोग बिना टिकट छतों पर यात्रा करते थे और गाड़ियाँ किसी भी स्टेशन पर समय से नहीं पहुँचती थी। क्या अद्‌भुत संयोग था? वाराणसी-दादर एक्सप्रेस में पढ़ने के लिए एक आदर्श किताब!

इसी बीच मुझे शौचालय जाने की ज़रूरत महसूस हुई। दरवाज़े पर खड़ी ठसाठस भीड़ पर एक नज़र डालते हुए मैं आगे बढ़ा। वहाँ पहुँचने की पूरी कोशिश की, लेकिन असफल रहा। अब तक शाम हो चुकी थी। अँधेरा बढ़ने लगा था। डिब्बे में पंखे चल रहे थे, लेकिन लाइट नदारद थी। मन बहलाने के लिए कुछ पढ़ नहीं सकते थे। मैं सपनों की दुनिया में खो गया।

सपने में मैंने देखा कि मैं अदालत में जज के सामने खड़ा हूँ... मुझ पर आरोप है कि मैंने कुछ असमाजिक तत्वों को बिना टिकट यात्रा करने, गाड़ी की ज़ंजीर खींचने और छत पर चढ़ने से मना किया है और उन्हें डाँटा-फटकारा भी।

जज मुझसे कह रहे थे कि तुम्हें मालूम होना चाहिए कि गणतंत्र दिवस पर इस मार्ग पर बिना टिकट यात्रा करना, ज़ंजीर खींचना, छत पर बैठना इत्यादि मौलिक अधिकार हैं। इन अधिकारों का हनन इतना बड़ा अपराध है कि उसके लिए कड़ी-से-कड़ी सज़ा भी कम है।

(शेष भाग पेज 37 पर)

चित्रः दिलीप चिंचालकर

जय वाराणसी एक्सप्रेस

(पेज 11का शेष भाग)

मैं अचम्भित-सा सोचने लगा कि क्या सज़ा-ए-मौत खत्म कर दी गई है। नहीं, ऐसा नहीं था बल्कि जज महोदय इससे भी बड़ी सज़ा देने के बारे में सोच रहे थे। बहुत सोचने-विचारने के बाद आखिर उन्होंने अपना फैसला सुना ही दिया, "अदालत अभियुक्त को सज़ा देती है कि वह आने वाले दस सालों में, हर गणतंत्र दिवस के मौके पर इस मार्ग पर इसी गाड़ी से यात्रा करे।"

सपना टूटा। शायद मैंने सज़ा-ए-मौत के लिए अपनी अर्ज़ी दी थी, लेकिन मुझे ठीक याद नहीं। मैं यह देखने के लिए उठा कि कहाँ पहुँच गया हूँ। खिड़की से झाँककर बाहर देखा – चाँदनी रात में नहाए, दूर-दूर तक फैले खेतों के बीच हमारी गाड़ी खड़ी है। बहुत सारे यात्री डिब्बे से उतरकर पास के गन्ने के खेत की तरफ भाग रहे हैं। इतनी लम्बी यात्रा में थकान और भूख से कौन परेशान नहीं होता! यात्रियों ने भरपेट गन्ना चूसा और पूरी तरह सन्तुष्ट होकर डिब्बे में लौट आए। गाड़ी ने फिर गति पकड़ी और आखिरकार हम रात के ग्यारह बजे इलाहाबाद पहुँच ही गए।

बम्बई के मेरे एक सहयोगी ने टिप्पणी की कि उन्हें वाराणसी में बन्दर नहीं दिखाई दिए। मेरे मुँह से निकला कि वे सब के सब तो हमारे साथ गाड़ी में थे। लेकिन आज मैं सोचता हूँ कि बिना टिकट यात्रा करने वाले और ज़ंजीर खींचने वाले उन तमाम यात्रियों की बन्दर से तुलना अनुचित थी, कम से कम वाराणसी के बन्दरों का यह अपमान था।